पावन जीवन चरित्र

श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी
महाराज जी का जीवन चरित्र

SGD

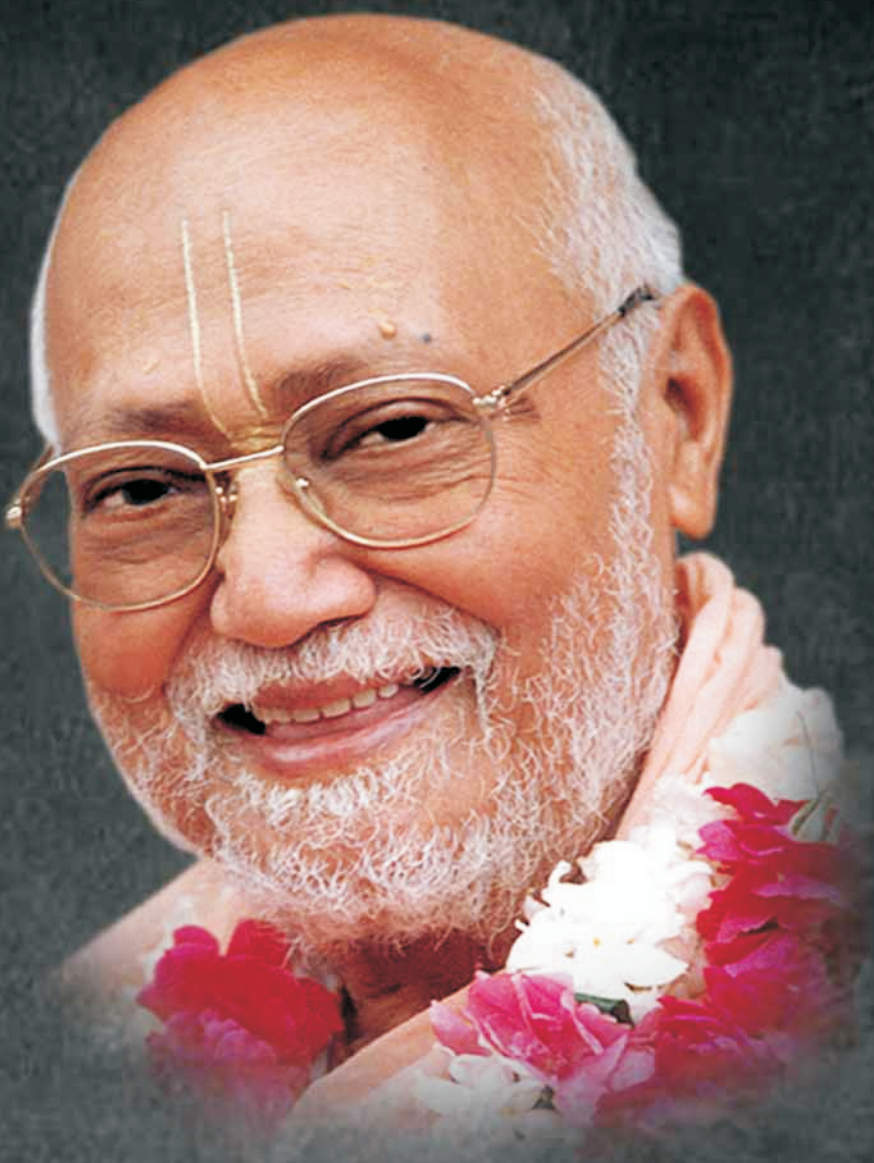

निखिल भारत श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता,
नित्यलीला प्रविष्ट ॐ 108
श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी
महाराज विष्णुपाद जी के
प्रियतम शिष्य, त्रिदण्डिस्वामी
श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज
जी द्वारा सम्पादित

SGD

प्रथम खंड

भाग - 12

बंगाल के तत्कालीन पण्डित श्री पंचानन तर्करत्न के साथ विचार

श्रीलगुरुदेव

SGD

आप में भक्ति-सिद्धान्तों के प्रतिकूल विचारों को खण्डन करने, भक्ति के अनुकूल विचारों को स्थापन कर समझाने की अति-अद्भुत क्षमता एवं आपका अमानी मानद स्वभाव देखकर श्रील प्रभुपाद जी ने आपको 4 अक्तुबर सन् 1936 में बंगाल के श्रेष्ठ पण्डित श्री पंचानन तर्करत्न, जो कि नेहाटी

भटट पल्ली में रहते थे, के साथ साक्षात्कार करने के लिए भेजा। पण्डित श्री पंचानन तर्करत्न महोदय को अपने ब्राह्मण व विद्वान होने का बड़ा गर्व था। उन्होंने श्रील प्रभुपाद जी के शास्त्र-युक्ति सम्मत वर्णाश्रम धर्म विचार की तीव्र समालोचना की थी।

तर्करत्न की इस प्रकार गलत धारणा से अनेक श्रेय प्रार्थी जीवों का अकल्याण हो सकता है, इस आशंका से ही

श्रील प्रभुपाद जी ने श्रीगुरुदेव जी को यह दायित्व दिया था। पंचानन तर्करत्न महोदय का नियम था कि वे ब्राह्मण को छोड़ और किसी को भी मर्यादा नहीं देते थे। इसलिए श्रील प्रभुपाद जी ने श्रील गुरुदेव को पूर्वाश्रम के श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल का परिचय व नाम बतलाने को कहा, यहाँ तक कि प्रभुपाद जी ने आपको वैष्णव चिन्हों से रहित होकर जाने को कहा।

प्रभुपाद जी के निर्देश को

शिरोधार्य करके आप निश्चित तिथि को प्रातः 8.30 बजे नेहाटी काठालपाड़ा निवासी श्री प्रफुल्ल कुमार चट्टोपाध्याय के साथ श्री पंचानन तर्करत्न महाशय के घर पहुंचे। यहाँ पर सर्वप्रथम आपका साक्षात्कार उनके योग्य पुत्र श्री जीव न्यायतीर्थ (एम. ए.) के साथ हुआ। बाद में तर्करत्न महाशय की आपके साथ लगभग दो घण्टे जो शास्त्रलोचना हुई व पण्डित महाशय के साथ शास्त्रालोचना करने से आपको जो अनुभव हुआ, वह आपने

बातचीत में अपने शिष्यों को भी बताया।

आपने कहा, "श्री पंचानन तर्करत्न महोदय का अगाध पाण्डित्य था, इसमें कोई सन्देह नहीं। बहुत से शास्त्रों के श्लोक उनको कण्ठस्थ ये परन्तु सिद्धान्त विषय में ये अनेक स्थानों पर सुसमाधान न दे सके, वे विचार करते-करते blind lane में पहुंच कर प्रश्नों के सही उत्तर देने में असमर्थ हो जाते थे।"

इतने बड़े विद्वान होते हुए भी ऐसा कैसे हुआ? इस सम्बन्ध में बोलते हुए श्रील गुरुदेव जी ने कहा कि विद्वान महाशय का शुद्ध-भक्त संग या वास्तविक साधु-संग नहीं हुआ था। शुद्ध-साधु के आनुगत्य व उनके संग को छोड़कर सिद्धान्त विषय में पारंगति नहीं हो सकती।

श्री पंचानन तर्करन के साथ श्रील गुरुदेव जी की जो लम्बी आलोचना हुई थी, उसके

मुख्य-मुख्य विषय श्रीगौड़ीय मठ से प्रकाशित 'पारमार्थिक' साप्ताहिक पत्रिका के 15वें वर्ष की 13वीं तथा 15वीं संख्या में प्रकाशित हुए थे, जो कि उस समय श्रील प्रभुपाद जी के निर्देशानुसार बंगला भाषा में प्रकाशित होती थी। 'गौड़ीय पत्रिका' (बंगला) के "कर्मजड़स्मार्तवाद एवं शुद्धभागवत सिद्धान्त" नामक शीर्षक में भी उक्त कथोपकथन प्रश्नोत्तर प्रसंग में दिया गया था जिसमें श्रील गुरुदेव जी के

पूर्वाश्रम का नाम महोपदेशक श्रीयुत हेरम्ब कुमार वन्योपाध्याय महाशय अथवा संक्षेप में महोपदेशक लिखा था। प्रस्तुत प्रसंग बहुत ही महत्वपूर्ण होने के कारण यथावत् से प्रकाशित किया जा रहा है:-

महोपदेशक हेरम्ब कुमार वन्योपाध्याय की भेंट सर्वप्रथम तर्करत्न महाशय जी के योग्य पुत्र श्री जीव न्याय तीर्थ (एम. ए.) महाशय के साथ हुई। तभी श्रीप्रफुल्ल बाबू जी ने श्रीगौड़ीय

मठ के प्रचारक का परिचय दिया–परिचय सुनने के बाद न्यायतीथ जी ने उनका स्वागत किया और कहा कि भारत एवं भारत के बाहर के देशों में जो गौड़ीय मठ का विपुल प्रचार हो रहा है वे इसके बारे में जानते हैं। बात करते-करते श्री न्यायतीर्थ जी ने निम्न श्लोक उच्चारण करते हुए कहा कि ये गौड़ीय मठ की बात है तो ?

"यथा कान्चनतां याति कांस्यं रसविधानतः।

तथा दीक्षा-विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्।।

महोपदेशक- ये सात्वत-पंचरात्र तत्त्वसागर की बात है तथा स्वयं श्रीचैतन्यदेव जी के आदेश से श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु द्वारा संकलित वैष्णव स्मृति निबन्ध 'हरि-भक्ति-विलास' नामक ग्रन्थ में भी इसे लिया गया है।

न्यायतीथ- आप लोग ही तो 'देश्य ब्राह्मण' शब्द प्रयोग करते हैं न?

महोपदेशक- ये जगद्गुरु श्रीधर स्वामीपाद और भार्गवीय मनु-संहिता की बात है।

प्रमाण—

1. त्रिवृत् शौक्रं सावित्रं दैव्यमिति त्रिगुणितं जन्म।

(भावार्थ दीपिका 10-23-39)

2. मातुरोग्रऽधिजननं द्वितीयं मौन्जि बन्धने।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुति-चोदनात्।।

{मनु. 2/169}

"जिस प्रकार रासायनिक क्रिया

द्वारा काँसा, सोना बन जाता है उसी प्रकार दीक्षा विधान के द्वारा मनुष्य (चाहे किसी भी वर्ण में पैदा हुआ हो) द्विजत्व को प्राप्त होता है।

"पहला जन्म माता से दूसरा जन्म उपनयन से तथा तीसरा श्रुति प्रेरित यज्ञ दीक्षा से होता है। इन तीनों जन्मों में यज्ञोपवीत चिन्हित जो जन्त है, उसे ही द्विज {ब्राह्मण} कहते हैं।

इसी प्रसंग को लेकर

न्यायतीर्थ महाशय के साथ महोपदेशक भक्ति शास्त्री जी की लगभग 15 मिनट तक आलोचना हुई। उसके बाद महोपदेशक जी ने श्री तर्करत्न महाशय के साथ भेंट करने की इच्छा की तो न्यायतीर्थ जी उन्हें भवन की दूसरी मंजिल पर ले गये जहां पण्डित पंचानन तर्करत्न महाशय विराजमान थे।

पण्डित पंचानन तर्करत्न महाशय ने महोपदेशक भक्ति शास्त्री से पूछा, 'तुम्हारा नाम

क्या है ? कहाँ रहते हो तुम ?

महोपदेशक – मेरा नाम श्री हेरम्ब कुमार वन्द्योपाध्याय है। मैं पहले विक्रमपुर भराकर में रहता था परन्तु अब श्रीगौड़ीय मठ में ही एक नगण्य सेवकाभास रूप से रहता हूँ। मैं नेहाटी-प्रचार के उपलक्ष्य में त्रिदण्डि पादगणों के साथ आया हूँ।

तर्करत्न – 'यथा कान्चतां याति' –

तुम्हारे गौड़ीय मठ की ही

तो बात है न?

महोपदेशक- ये सात्वत-स्मृति एवं पंचरात्र की बात है। श्रीचैतन्य देव तथा गोस्वामी वृन्दों ने इसी श्रौत वाणी का प्रचार किया। श्रीगौड़ीय मठ-श्रीचैतन्य देव के आचार एवं प्रचार तथा श्रीमद्भागवत शास्त्र के विचार के सम्पूर्ण अनुगत है। तर्करत्न- गौड़ीय मठ चैतन्य देव के किस प्रकार अनुगत है?

तर्करत्न- गौड़ीय मठ चैतन्य

देव के किस प्रकार अनुगत है? मैं समझता हूँ कि वे लोग चैतन्य देव को ही नहीं मानते।

महोपदेशक- क्या आप श्रीचैतन्य देव को जानते हैं, यदि जानते हैं तो किस भाव से?

तर्करत्न- चैतन्य देव एक परम भक्त एवं विद्वान थे ।

महोपदेशक- मैं समझता हूँ कि आपने निश्चय ही श्रीचैतन्य चरितामृत आदि ग्रन्थ पढ़े होंगे।

तर्करत्न- हाँ, मैंने चैतन्य

चरितामृत पढ़ा है। वह बंगला पयारों वाली पुस्तक है। उससे चैतन्य देव की बात समझने में किसी विद्वता की आवश्यकता नहीं होती। उसे सभी समझ सकते हैं ।

महोपदेशक- पाठक की विभिन्न योग्यता होने से उससे एक ही वस्तु की विभिन्न भाव से धारणा का पार्थक्य क्या आप स्वीकार करते हैं ?

तर्करत्न- चैतन्य चरितामृत के समान सहज और सरल पुस्तक

के विषय को समझने के लिए विशेष योग्यता की जरूरत क्या है? उसको सभी एक ही भाव से समझते हैं।

महोपदेशक– {पास में बैठे छात्रों की ओर संकेत करते हुए} क्या प्रत्येक छात्र आपकी बातों की एक ही भाव से उपलब्धि करते हैं ?

छान्दोग्य श्रुति {आठवें अध्याय के सात से बारहवें परिच्छेद तक} में देखने को मिलता है कि विरोचन और इन्द्र

दोनों ही ब्रह्मा के पास वेदाध्ययन करने गए थे। एक ही मन्त्र के तात्पर्य को अलग-अलग भाव में समझने के कारण विरोचन ने आसुरिक मतवाद जबकि इन्द्र ने {ब्रह्मा जी के हृदय के वास्तविक तात्पर्य की उपलब्धि करके} देव-सिद्धान्त का प्रचार किया था।

शास्त्र में कहते हैं कि गंगा के किनारे आम और नीम एक ही पंक्ति में लगे हैं तथा दोनों एक ही गंगा के सुमधुर

जल का पान करते हैं। ऐसा होने पर भी नीम का पेड़ कड़वा तथा आम का पेड़ अमृतमय फल प्रदान करता है।

इसी प्रकार श्रीचैतन्य चरितामृत पाठ करके कोई तो अचैतन्य ज़हर उगलता है और कोई अमृत संग्रह करता है।

तर्करत्न- चैतन्य देव ने ब्राह्मणों को छोड़ किसी अन्य के द्वारा पकाया अन्न ग्रहण नहीं किया, चैतन्य चरितामृत पढ़ने से ये

स्पष्ट ही जाना जाता है। क्या तुम इसे स्वीकार करते हो ?

महोपदेशक- श्रीचैतन्यदेव जी 'भोज्यान्न विप्र अर्थात वैष्णव ब्राह्मण के घर में ही निमन्त्रण स्वीकार करते थे। 'अभोज्यान्न विप्र' अर्थात् ब्राह्मण कहलाने वाले अवैष्णव ब्राह्मण के घर में महाप्रभु जी ने कभी भी निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। यदि ये ही बात होती कि महाप्रभु जी सिर्फ ब्राह्मणों द्वारा पकाया अन्न ही ग्रहण करते थे तो ग्रन्थ

में 'भोज्यान्न' और 'अभोज्यान्न' शब्दों का प्रयोग नहीं होता। महाप्रभु जी ने ऐसे सनोड़िया विप्र, जिनके हाथ से उच्च वर्ग के लोग पानी तक नहीं पीते थे, को श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद का आश्रित भगवद्-भक्त जानकर पुरीपाद के आदर्श अनुसार, उसके द्वारा पकाया अन्न भी ग्रहण किया था।

"अभोज्यान्त्र-विप्र यदि करे
निमन्त्रण।
प्रसाद-मूल्य लइते लागे कौड़ि

दुइपण।।”

भोज्यान्न विप्र यदि निमन्त्रण करे।

किछु प्रसाद आने, किछु पाक करे घरे।।”

(चै. च. अ. 8 / 81-82)

(अर्थात अभोज्यान्त विप्र यदि श्रीमन महाप्रभु जी को अपने घर भोजन के लिए निमन्त्रण करता था तो सारा प्रसाद बाज़ार से खरीदता था जिसमें उसका केवल दो पण कौड़ी ही खर्च होता था। भोज्यान्न विप्र यदि प्रभु को

निमन्त्रण करता था तो वह कुछ प्रसाद बाजार से खरीद कर लाता और कुछ अपने घर में रसोई करता था।)

तर्करत्न- काशी में चैतन्यदेव, भक्त चन्द्रशेखर के घर में रहते हुए भी उसे शूद्र विचार कर, ब्राह्मण तपनमिश्र के घर में अन्न ग्रहण करते थे।

महोपदेशक- किन्तु श्रीचैतन्य देव ने तो मायावादी ब्राह्मण-संन्यासियां का निमन्त्रण भी स्वीकार नहीं किया, यद्यपि

संन्यासी लोग ब्राह्मण, त्यागी, तपस्वी एवं शुद्धाचारी थे।

यथा–

"तपनमिश्रर घरे भिक्षा निर्वाहण।
संन्यासीर संगे नाहि माने
निमन्त्रण।।"

{चै.च.आ. 7/46}

{श्रीमन् महाप्रभु तपन मिश्र जी के घर में भोजन आदि करते थे। वे संन्यासियों के साथ भोजन करने के लिए किसी का भी निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते

थे}

महाप्रभु जी चन्द्रशेखर जी के घर अन्न ग्रहण न करके तपन मिश्र के घर भिक्षा निर्वाह {भोजन} करते थे। इसका कारण तपन मिश्र व चन्द्रशेखर के प्रति जाति बुद्धि नहीं था। काशी में श्रीमन् महाप्रभु जी के आने का मुख्य उद्देश्य मायावादी संन्यासियों का उद्धार करना ही था एवं "सवे मात्र एड़ाइल काशीर मायावादी इसी विचार से उन्होंने मायावादी संन्यासी का

वेष ग्रहण करने का अभिनय भी किया। वस्तुतः जिन्होंने मायावाद और कर्मजड़ स्मार्त धर्म का हर प्रकार से खण्डन किया, उनके द्वारा मायवादी संन्यासी का वेष ग्रहण किया जाना केवल छद्मवेशी गुप्तचर {जासूस} की तरह ही था। गुप्तचर जिस प्रकार चोर और अपराधी के वेश में उनके दल में शामिल होकर उनका भाण्डा फोड़ करता है, उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु जी ने भी मायावादी संन्यासियों का उद्धार करने के लिए उनके

व्यवहारिक आदशों के पालन का अभिनय किया। गुप्तचर द्वारा डाकू का वेश धारण करना व उनकी तरह क्रियादि करना वास्तविक नहीं होता, वह केवल अभिनय होता है।

तर्करत्न- काशी के इलावा अन्य कहीं तो महाप्रभु अपने शूद्र कुल में उत्पन्न भक्तों के साथ भोजनादि कर सकते थे या उनका पकाया हुआ अन्न ग्रहण कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया; क्यों?

महोपदेशक- शान्तिपुर में श्रीमन्महाप्रभु जी के आदेशानुसार श्री अद्वैत आचार्य जी ने अपने घर में यवन कुल में अवतीर्ण ठाकुर हरिदास जी के साथ एक ही पंक्ति में भोजन किया था।

"प्रभु बलेन वचन।
मुकुन्द, हरिदास लइया करह भोजन।।"
"तबे तो आचार्य संगे लड़या दुइजने।
करिल भोजन इच्छा ये आछिल मने।।"

{चै. च. मध्य 3/105-107}

{श्रील महाप्रभु जी ने कहा मुकुन्द एवं हरिदास को साथ लेकर आप भोजन करिये, तभी तो श्रीअद्वैत आचार्य जी ने उन दोनों को साथ ले जाकर इच्छापूर्वक अर्थात् श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रसाद का भोजन किया जो कि उनका मनोवाञ्छित था।}

सर्वतन्त्र - स्वतन्त्र भगवान् कृपापूर्वक जिनके हाथ से भोजन ग्रहण करते थे, वे ही

उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रण दिया करते थे। भक्ति का वैशिष्ट्य ही ये होता है कि इसमें अपनी इन्द्रिय तृप्ति के लिए गुरु, वैष्णव या भगवान् को भोग करने की चेष्टा नहीं होती {अर्थात् गुरु, वैष्णव या भगवान् से किसी व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति की चेष्टा नहीं होती} इसमें प्राकृत और कर्ममार्गीय जाति का या उससे सम्बन्धित विचार का कोई स्थान नहीं होता। भगवान जिसकी सेवा जिस प्रकार से ग्रहण करना चाहते हैं, वे उसी

भाव से उक्त सेवा को करके सेव्य की इन्द्रिय तृप्ति करते हैं।

आचार्यवर्य श्रील जीव गोस्वामी प्रभु जी ने श्रीचैतन्य देव की शिक्षा व दीक्षा में शिक्षित व दीक्षित होकर गरुड़ पुराण के वाक्य को स्व-रचित 'भक्ति-सन्दर्भ' नामक ग्रन्थ में उद्धृत करते हुए कहा है कि–

"ब्राह्मणानां सहसेभ्यः सत्रवाजी
विशिष्यते।
सत्रयाजिसहत्रेभ्यः
सर्ववेदान्तपारगः।।"

"सर्ववेदान्तवित्कोट्या
विष्णुभक्तो विशिष्यते।
वैष्णवानां सहस्त्रेभ्यः एकन्येको
विशिष्यते।।"

{भक्ति सन्दर्भ 177 संख्याघृत गारुड़
वाक्य}

अर्थात् हज़ार ब्राह्मणों की अपेक्षा एक याज्ञिक श्रेष्ठ है, हजार याज्ञिकों की अपेक्षा एक सर्ववेदान्त शास्त्रज्ञ श्रेष्ठ है। एक करोड़ सर्ववेदान्त शास्त्रज्ञों की अपेक्षा एक विष्णु भक्त श्रेष्ठ है। हज़ार वैष्णवों की अपेक्षा एक एकान्तिक

{अनन्य} भक्त श्रेष्ठ है।

श्रीमन्महाप्रभु जी के प्रिय भक्त कालीदास ने सम्भ्रान्त एवं उच्च वंश में जन्म ग्रहण करते हुए भी भुंइमाली कुल {निम्न कुल} में आविर्भूत झंडू ठाकुर के कूड़ेदान से जुठे फल उठाकर खा लिए थे। झडू ठाकुर में भुंइमाली या ठाकुर हरिदास जी में मुसलमान बुद्धि होती तो श्रीचैतन्य देव या उनके भक्त ऐसा आदर्श प्रचार न करते।

तर्करत्न- भक्त श्रेष्ठ है, ये

ठीक है; किन्तु उसमें स्पर्शास्पर्श का विचार नहीं है-ये बात शास्त्र विरुद्ध है।

महोपदेशक- 'भक्त अथच अस्पृश्य' ये बात सोने की मिट्टी की कटोरी के समान निरर्थक है {अर्थात जो कटोरी सोने की होगी वह निश्चय ही मिट्टी की बनी नहीं हो सकती क्योंकि कटोरी या तो मिट्टी की होगी या सोने की। इसी प्रकार जो भक्त होगा वो तो सर्वपूज्य होगा। अतः भक्त और अस्पृश्य

ये बात तो सोने की बनी मिट्टी की कटोरी के समान निरर्थक है}। श्रीचैतन्य देव यदि हरिदास ठाकुर जी को अस्पृश्य समझते तो उनके निर्याण {शरीर त्याग} के बाद उनकी देह को अपनी गोद में उठाकर नृत्य करने का परम पवित्र आदर्श प्रदर्शित न करते।

वह एक तो चारों वर्गों से बाहर पंचम-षष्ठ-सप्तम संज्ञ अन्त्यज जाति का शरीर और फिर वो भी मृत शरीर - दोनों

तरह से अस्पृश्य!! किन्तु महाप्रभु जी ने कहा कि हरिदास ठाकुर के स्पर्श से सर्वपावन-सरिताकुलाश्रय समुद्र भी महातीर्थ बन गया है। श्रील हरिदास ठाकुर की देह को यदि अस्पृश्य नीच जाति के किसी व्यक्ति की देह या कमर्फल बाध्य जीव की मृत देह विचार किया जाता तो उस देह के सबसे निचले अंग अर्थात् चरणों के धोये हुए जल को श्रीमन्महाप्रभु की उपस्थिति में ही भक्त लोग भला क्यों पान करते?

केवल महाप्रभु जी की शिक्षा में ही नहीं बल्कि पूर्व-पूर्व सनातन वैष्णव धर्माचार्य-गणों के आचरण में भी इसी प्रकार का सत्य प्रकाशित होता है। ब्राह्मण कुल के शिरोमणि श्रीरामानुजाचार्य जी ने जब सुना कि उनके गुरु महापूर्ण जी ने शूद्र कुल में उत्पन्न किसी भक्त के अप्रकट होने के बाद उसके शरीर का अन्तिम संस्कार किया, जिससे कर्मजड़स्मार्त सम्प्रदाय वाले उनके इस अब्राह्मणोचित कार्य की निन्दा कर रहे हैं, यहाँ

तक कि महापूर्ण जी के आत्मीय स्वजनों ने भी उन्हें परित्याग कर दिया है, तो वे (रामानुजाचार्य) अपने गुरु जी के पास पहुँचे। महापूर्ण जी ने श्रीरामानुज को बताया कि उन्होंने धर्म शास्त्रों के अनुसार ही कार्य किया है क्योंकि महाजनों के पथ का अनुसरण करना ही धर्म है। जटायु तिर्यक योनि (पक्षी योनि) में उत्पन्न होने पर भी भगवद्भक्त होने के कारण भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने उसके मृत देह का संस्कार किया था।

युधिष्ठिर क्षत्रिय कुल में आविर्भूत होते हुए भी दासी पुत्र तथा शुद्र कुल में आये विदुर जी की पूजा करते थे; इसलिए महापूर्ण भी उक्त शूद्र कुलोत्पन्न भक्त की सेवा (अन्तिम संस्कार रूप सेवा) लाभ करके अपने आपको कृतार्थ ही समझ रहे हैं। बहिर्मुख आत्मीय स्वजनों तथा नामधारी कर्मजड़ सम्प्रदाय वालों द्वारा उनको अलग कर दिए जाने से उनका मंगल ही हुआ; क्योंकि अनेक प्रयत्न करके भी वे जिन

भक्ति-विरोधी भोगी लोगों के दुःसंग से दूर रहना चाहते थे, श्रीभगवान् की कृपा से वह दुःसंग स्वयं ही दूर हो गया।

'प्रपन्नामृत-ग्रन्थ' का पाठ करने से जाना जाता है कि एक समय चाण्डाल वंश में आविर्भूत तिरुप्पानी नामक एक दक्षिण देशीय भगवद् भक्त कावेरी नदी के किनारे हरिकीर्तन करते-करते बाह्य संज्ञाहीन (बेहोश) हो गया। उसी समय श्रीरंगनाथ देव का

'मुनि' नामक एक ब्राह्मण पुजारी श्रीविग्रह के अभिषेक के लिए कावेरी से जल लेकर मन्दिर की ओर जा रहा था। अचानक उसकी नज़र रास्ते पर निद्रित अवस्था में पड़े तिरुप्पानी पर पड़ी। उन्होंने उसे उठाने के लिए कई बार रूखे स्वर में पुकारा परन्तु वह न उठा। अछूत जाति को हाथ से छूने से वह अपवित्र होगा व देव सेवा का जल भी नष्ट हो जाएगा—ऐसा विचार कर तिरुप्पानी के अंग में उस ब्राह्मणाभिमानी पुजारी ने मिट्टी

का एक ढेला मार कर उन्हें जगाया। इधर पुजारी जब श्रीरंगनाथ जी के सम्मुख उपस्थित हुआ तो उसने देखा कि मन्दिर का दरवाज़ा अन्दर से बन्द है। अनेक बार पुकारने पर पुजारी को मन्दिर से एक आवाज़ सुनाई दी- 'श्रीरंगनाथ जी कह रहे हैं कि ब्राह्मणाभिमानी पुजारी ने उनके भक्त को अछूत चाण्डाल समझकर जो मिट्टी का ढेला फेंका था उसकी चोट उनको ही लगी है। मेरे भक्त को जब तक पुजारी कन्धे पर

बैठाकर मन्दिर की परिक्रमा नहीं करेगा, तब तक मन्दिर का दरवाज़ा नहीं खुलेगा।' तभी पुजारी उस भक्त को कन्धे पर बैठा कर लाया और उसने मन्दिर परिक्रमा की, तब जाकर कहीं दरवाज़ा खुला। मुनि नामक ब्राह्मण उनका वाहन हुआ था, इसलिए श्री तिरुप्पानी आज भी 'श्री सम्प्रदाय' में 'मुनि वाहन' आलवन्दारु नाम से पूजित होते हैं। उत्कृष्ट ब्राह्मण कुल में अवतीर्ण श्रीरामानुजादि आचार्य लोगों ने भी उस मुनि वाहन की

नित्य पूजा की थी। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न आलवन्दारु ऋषि ने शूद्र कुल में आविर्भूत भक्तावतार शठकोप को प्रणाम करते हुए कहा था–

"माता पिता युवतयस्तनया
विभूतिः सर्वं यथेव नियमेन
मदन्वयानाम्।
आद्यस्य नः
कुलपतेर्वकुलाभिरामं
श्रीमत्तदंघ्रि युगलं प्रणमामि
मूर्द्धना।।"

{आलवन्दारु – स्तोत्र का सप्तम

श्लोक}

अर्थात् हमारे कुल के प्रथम आचार्य शठकोप के श्रीमत् चरणयुगल में मैं मस्तक द्वारा प्रणाम कर रहा हूँ। हमारे वंश की शिष्य परम्परा में शिष्यवर्ग की समस्त सम्पत्ति ये श्रीमद् चरण युगल ही हैं। यहाँ तक कि हमारी परम्परा के शिष्यों के माता-पिता, स्त्री, पुत्र एवं धन-दौलत आदि सब कुछ शठकोप के ये श्रीचरण ही हैं।

तर्करत्न- शूद्र ब्राह्मणों का गुरु

कैसे हो सकता है? ये कौन से शास्त्र में है? चैतन्य देव ने भी तो ये स्वीकार नहीं किया है?

महोपदेशक- आप जैसे शास्त्रज्ञ विद्वान के मुँह से ये बात सुनकर मैं आश्चर्यान्वित हो रहा हूँ। हाँ, फिर भी आपके मुख से सरस्वती जी सत्यकथा ही बुलवा रही हैं। शूद्र कभी भी ब्राह्मणों का गुरु नहीं हो सकता। किन्तु वैष्णव शूद्र नहीं होता, विष्णु सेवक के अन्दर ब्रह्मज्ञता एवं योगित्व अवश्य ही विद्यमान रहता है।।

आप शास्त्रों के ज्ञाता होते हुए भी शास्त्र के इस प्रसिद्ध वाक्य को क्या भूल गये हैं–

"अर्च्य विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि-
विष्णुर्वा वैष्णवानां कलिमल-मथने पादतीर्थेऽम्बु बुद्धिः।।
श्रीविष्णोनाम्रिमन्त्रे सकल कलुषहे शब्द सामान्य बुद्धि-विष्णो सर्वेश्वरेशे
तदितरसमधीर्यस्य वा नारक सः"।।

{पद्म पुराण}

{श्री पद्म पुराण में कहते हैं कि जो लोग विष्णु जी के अर्चा

विग्रह को पत्थर समझते हैं, गुरुदेव जी को साधारण मनुष्य मानते हैं, वैष्णयों में जाति बुद्धि करते हैं, कलि के पापों को नाश करने वाले विष्णु और वैष्णवों के चरणामृत को साधारण पानी समझते हैं, समस्त पापों को नाश करने वाले श्रीविष्णु जी के नाम-मन्त्र को सामान्य शब्द मानते हैं तथा भगवान् विष्णु जी को अन्यान्य देवताओं के समान समझते हैं ये सभी नारकीय हैं अर्थात् महापापी हैं।" }

इस श्लोक को सुन कर श्री तर्करत्न महाशय चुप रह गए।

महोपदेशक जी ने आगे कहा कि आपने श्रीचैतन्य चरितामृत के पाठ के समय देखा होगा कि मुसलमान कुल में आये श्रीहरिदास ठाकुर ब्राह्मण कुल के श्री बलराम आचार्य के गुरु थे तथा चैतन्य चरितामृत में ही पढ़ा होगा कि–

"किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र

केने नय।
येइ कृष्ण तत्त्ववेत्ता सेइ 'गुरु' हय।।"

{चाहे विप्र, चाहे संन्यासी अथवा शूद्र ही क्यों न हो; जो कृष्ण-तत्त्व को भली-भाँति जानता है वही गुरु होता है।}

तर्करत्न- शिक्षा गुरु के सम्बन्ध में इस प्रकार की उक्ति हो सकती है, परन्तु दीक्षा गुरु तो निश्चय ही ब्राह्मण होंगे।

महोपदेशक- हरि-भक्ति

विलास में श्री सनातन गोस्वामी प्रभु जी ने जिन सात्वत शास्त्रों को उद्धृत किया है, उनसे जाना जाता है कि–

{1} "न शूद्राः भगवद् भक्तास्तेऽपि भागवतोत्तमाः। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा येन भक्ता जनार्दने।"

भगवद् भक्त कभी भी शूद्र नहीं होता क्योंकि वह उत्तम भागवत् है, जबकि भगवान् का अभक्त सभी वर्गों में रहते हुए भी शुद्र है।

{2} "षट् कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्र-तन्त्र विशारदः।
अवैष्णवो गुरुर्न स्याद्-वैष्णवः श्वपचो गुरुः।।"

षड़गुणों से युक्त तथा तन्त्र-मन्त्र में पारंगत अवैष्णव ब्राह्मण भी गुरु नहीं हो सकता। {पद्म पुराण} जबकि चाण्डाल भी भक्त होने पर गुरु हो सकता है।

{3} "महाकुल-प्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्त्रशाखाध्यायी च न गुरुस्याद वैष्णवः।।"

उच्च कुल में उत्पन्न, सहस्त्रध्यायी तथा सभी यज्ञों में दीक्षित अवैष्णव, गुरू नहीं हो सकता।

{4} "विप्र क्षत्रिय वैश्याश्च गुरुवः शूद्रजन्मनाम्।
शूद्राश्च गुरवस्तेषां त्रयाणां भगवतप्रियाः।।"

भगवद् भक्त शूद्र कुल में होने पर भी ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य-इन तीनों कुलों का गुरु है।

दीक्षा-गुरु और शिक्षा गुरु में तत्वतः कोई भेद नहीं है। दोनों में केवल लीला वैचित्रय ही विद्यमान है। आश्रय-विग्रह शिक्षा गुरु अभिधेय-विग्रह हैं एवं आश्रय विग्रह दीक्षा-गुरु सम्बन्ध ज्ञानदाता हैं। इसलिए शिक्षा-गुरु एवं दीक्षा-गुरु परस्पर अलग-अलग वस्तु नहीं हैं। दोनों में किसी को बड़ा तथा किसी को छोटा समझने से अपराध होता है। जैसा कि चैतन्य चरितामृत में हम देखते हैं कि-

“यद्यपि आमार गुरु-चैतन्येर
दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार
प्रकाश।।”

यद्यपि मेरे गुरु जी श्रीमन्चैतन्य महाप्रभु जी के दास हैं तथापि मैं उन्हें उनका {भगवान् का} प्रकाश मानता हूँ।

“गुरुकृष्ण रूप ह’न शास्त्रेर
प्रमाणे।
गुरुरूपे कृष्णकृपा करेन
भक्तगणे।।”

शास्त्र के प्रमाणों के अनुसार

गुरुदेव कृष्ण का ही रूप होते हैं। गुरु रूप में ही कृष्ण भक्तों पर कृपा करते हैं।

"आचार्यं मां
विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो
गुरुः।।"

भगवान उद्धव को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे उद्धव! श्रीगुरुदेव को मेरा ही रूप जानकर कभी भी उनकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए तथा उन्हें साधारण मनुष्य जानकर उनमें

कभी भी दोषों को नहीं देखना चाहिए क्योंकि श्रीगुरुदेव सर्वदेवमय हैं।

{भागवत 11/17/22}

"शिक्षा-गुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ-एइ दुइ रूप।।"

शिक्षा गुरु {जो भजन की शिक्षा देते हैं} को श्रीकृष्ण का स्वरूप अर्थात् श्रीकृष्ण के समान पूज्य जानना चाहिए। शिक्षा गुरु के दो रूप हैं

1. अन्तर्यामी परमात्मा 2. श्रेष्ठ भक्तगण

{चै. च. आ. 44-45}

'किवा विप्र किवा न्यासी'—ये वाक्य यदि केवल शिक्षा गुरु के सम्बन्ध में होते तो श्रीमन्महाप्रभु ईश्वरपुरी नामक संन्यासी से, नित्यानन्द प्रभु श्रील माधवेन्द्र पुरी गोस्वामी {मतान्तर में श्री लक्ष्मीपति तीर्थ} नामक संन्यासी से एवं अद्वैत आचार्य भी इन्हीं माधवेन्द्रपुरी से ही दीक्षित होने की लीला क्यों करते? श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभु, जो

कि कायस्थ जाति से सम्बन्ध रखते थे, जगद्गुरु और आचार्य नाम से ही गौड़ीय सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हैं। श्रीगंगानारायण चक्रवर्ती एवं श्रीरामकृष्ण भट्टाचार्य जी ब्राह्मण होते हुए भी लौकिक अब्राह्मण कुल में आये श्रीनरोत्तम ठाकुर जी व काटोया के श्रीयदुनन्दन चक्रवर्ती जी, श्रीदासगंगाधर जी एवं श्रीरसिकानन्द जी शौक्र ब्राह्मणेतर कुलोद्भूत श्रीश्यामानन्द प्रभु जी के निकट पांचरात्रिकी दीक्षा में दीक्षित हुए

थे। श्रीरामकृष्ण भट्टाचार्य ने श्रील नरोत्तम ठाकुर जी से जब दीक्षा ग्रहण की तो रामकृष्ण के पिता शिवाइ भट्टाचार्य ने पुत्र के प्रति आग बबूला होकर कहा था–

"ओ रे मूर्ख! कह देखि
कोन-शास्त्रे कय?
ब्राह्मण हड़ते कि वैष्णव बड़
हय?
विप्र शिष्य कैल से वा केमन
वैष्णव?
पण्डितेर समाजे कराब पराभव
।।"

"ओ मूर्ख ! बोल तो, देखूँ किस शास्त्र में कहते हैं कि ब्राह्मण से वैष्णव श्रेष्ठ होता है ? उसने {नरोत्तम ठाकुर जी ने} ब्राह्मण को भी शिष्य बनाया, वह कैसा वैष्णव है ? मैं विद्वानों के समाज में उन्हें पराजित करवाऊँगा।

{नरोत्तम विलास दशम विलास }

श्रीनरहरि चक्रवतीं जी ने ब्राह्मण कुल में अवतीर्ण होने पर भी स्वरचित 'नरोत्तमविलास' ग्रन्थ में उच्च स्वर से उक्त पंक्तियों का उल्लेख किया है। शिवाइ

भट्टाचार्य जी दिग्विजयी मुरारी पण्डित को लाकर भागवत धर्म के विचार को खण्डित कराने के प्रयास में किस प्रकार लज्जित हुए थे और दिग्विजयी पण्डित भी किस प्रकार से पराजित हुए थे - उन सभी का श्रीनरहरि चक्रवर्ती जी ने अपने उक्त ग्रन्थ में विस्तार से वर्णन किया है।

अतएव कर्मजड़ सम्प्रदाय वालों का जिन्होंने समझते हुए भी न समझने का, शास्त्र वचनों को मानते हुए भी न मानने का

संकल्प किया {क्योंकि मानने से देहात्म बोध परित्याग करना होगा, अपस्वार्थ को विसर्जन करना होगा जो कि असम्भव सा है}- इस प्रकार कुतर्क करना कोई नई बात नहीं है। किन्तु श्रीमद्भागवत, श्रुति, स्मृति, पुराण, पंचरात्र आदि शास्त्र एक स्वर से बाजुएँ ऊपर उठाकर व बड़े उत्साह के साथ स्वीकार करते हैं कि वैष्णवों का आनुषगिंक भाव में ही पारमार्थिक ब्राह्मणत्व है। जिस प्रकार एक लाख मुद्राओं के

अर्न्तगत सौ मुद्रा अपने आप ही आ जाती हैं, उसी प्रकार वैष्णवता के अन्तर्गत ब्रह्माता स्वयं ही आ जाती है–ऐसा कह कर श्रीजीव गोस्वामी प्रभु जी ने कैमुति न्याय के अनुसार वैष्णवों का पारमार्थिक ब्राह्मणत्व स्वीकार किया है।

तर्करत्न- श्रुतियों में ब्राह्मणता का इस प्रकार विचार कहाँ है ?

महोपदेशक- श्रुतियों में भी वृत्तियों के अनुसार ब्राह्मणता के अनेकों उदाहरण पाये जाते हैं

जैसे कि सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद {चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ खण्ड} में जाबाला के पुत्र सत्यकाम और गौतम के प्रसंग से जाना जाता है कि गौतम जी ने सत्यवादिता और सरलता इन गुणों के आधार पर ही सत्यकाम जाबाल का वर्ण निर्णय किया था।

"तं होवाच किं गोत्रे
सोम्यसीति।
स होवाय नाहमेतद्वेद भो
यद्गोत्रोऽहं अस्मि।

अपृच्छं मातरम्।

सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ति

परिचारिणी यौवने त्यामलभे।

सात्वं एतत् न वेद

यद्गोत्रस्त्वमसि।

जबाला तु नाम अहमस्मि।

सत्यकामो नाम त्यमसीति।

सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि

भो इति।

तं होवाच नैतद्ब्राह्मणो

विद्युक्तमर्हति समिधं सोम्य आहर

उप-धा-मेषो।

न सत्यादगा इति।

(छान्दोग्य 4-4-5)

तर्करत्न- ये बात भी तुम्हारी मनःकल्पित है। सत्यकाम जाबाल तो ब्राह्मण के पुत्र थे।

महोपदेशक- इसका प्रमाण क्या है ?

तर्करत्न- ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न लड़के की ही उचित उम्र होने पर गुरु-गृह में जाने के लिए व ब्रइचर्य आश्रम में प्रवेश होने के लिए स्वाभाविक रुचि देखी जाती है। इस संस्कार के द्वारा जाबाल की जाति

{ब्राह्मण} निरुपित हुई है।

महोपदेशक- ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न लड़के की गुरु गृह जाने में अरुचि व ब्रइचर्य आश्रम के प्रति विरक्ति भी देखी जाती है। वर्तमान समय में इस प्रकार के सैंकड़ों सैंकड़ों प्रमाण दिखाकर क्या आपको समझाना पड़ेगा?

तर्करत्न- "बहवहं" शब्द का अर्थ तुम दूसरा ही समझते हो, यहाँ पर इसका अर्थ "बहुतों की परिचर्या" नहीं होगा। यहाँ अर्थ होगा "बाहुल्येन" अर्थात् बहुत

प्रकार से सेवा परिचर्या।

महोपदेशक- आपकी बात ही यदि मान ली जाये कि जाबाला ने बहुत तरह से पति की सेवा की, तो बहुत तरह से परिचर्या करने से क्या कोई सती सहधर्मिणी अपने पति का नाम व गोत्र सम्पूर्ण रूप से भूल सकती है ?

तर्करत्न- पति का नाम उच्चारण नहीं करते, इसलिए जाबाला अपने पुत्र के पास अपने स्वामी का नाम न बोल सकी।

महोपदेशक- अच्छा, आपकी

ही बात मान लेता हूँ कि पति का नाम जानते हुए भी पतिव्रता ने अपने पति का नाम उल्लेख नहीं किया। परन्तु गोत्र बोलने में क्या आपत्ति थी? "बहवहं" में 'बहु' शब्द क्रिया विशेषण अथवा वर्गवाचक रूप में (संघ वाचक रूप में) लेना चाहिए। 'बहु' शब्द के द्वारा बहुत प्रकार से, बहुत से स्थानों पर, बहुत से लोगों की परिचर्या एवं इसके बाद ही "यौवने त्वामलभे" {यौवन अवस्था में तुम्हें प्राप्त किया} वाक्य के द्वारा परिचर्या का फल

सूचित होता है। यदि गोत्र न जानने का कारण अपने पति के घर में बहुत प्रकार की सेवा में मग्नता ही होता तो "यौवने त्वामलभे" वाक्य की क्या सार्थकता होगी? बहुत प्रकार से सेवा करते-करते यौवन अवस्था में मैंने तुम्हें प्राप्त किया—क्या ये ही पति के गोत्र का न मालूम होने का उचित कारण है? 'यौवने' शब्द के द्वारा श्रुति जिस गम्भीर और संयत भाषा में अप्रकाशित सत्य घटना को प्रकाशित या इंगित करना

चाहती है अपने किसी मतलब से अर्थात् उसके अर्थ में विकृति कर देने से सत्य बात क्या मिथ्या हो जाती है? यौवन अवस्था में ही पुत्र पैदा होता है। इसलिए यौवन अवस्था में बहुत सेवा करते-करते तुम्हें पुत्र रूप में प्राप्त किया इस प्रकार की उक्ति में यदि अन्य इंगित न हो तो इस प्रकार की उक्ति अप्रासंगिक और निरर्थक हो जाती है । इसके इलावा इस प्रकार की उक्ति में जो थोड़ा सा इंगित किया गया है, वह गाम्भीर्यपूर्ण

तथा संयत भाषा में प्रकाशित होने से भी ऋषि गौतम यदि उसे न समझ पाते तो वे उसे {सत्यकामजावाल को} सरल और सत्यवादी क्यों बतलाते? "पिता या माता का पुत्र" इस प्रकार की उक्ति में सरलता व सत्यवादिता का कोई निर्देशन व वैशिष्ट्य नहीं होता। ये बात सर्वसाधारण भी जानता है; किन्तु माता के अन्य विचार होने पर भी जब सत्यकाम ने सरलता के साथ सब कह दिया तभी तो गौतम जी ने इस प्रकार की

उक्ति को समझ कर बालक की अनावृत सत्यवादिता और सरलता की प्रशंसा करते हुए कहा—इस प्रकार स्पष्ट बोलने की योग्यता केवल ब्राह्मण में ही हो सकती है; अतएव में तुम्हारा उपनयन संस्कार करूँगा।"

गोपनीय विषय को लोगों के सामने प्रकाश करने से व्यक्तिगत व सामाजिक हानि होती है ये जानते हुए भी उसे निष्कपट रूप से प्रकाश है—ये कर देने का नाम ही सरलता व

सत्यवादिता है। साधारण विषय व सभी के ज्ञात विषय में सरलता व सत्यवादिता का कोई परिचय नहीं होता–इसके द्वारा ही "बहवहं चरन्ती परिचारिणी"– इस वाक्य का वास्तविक संकेत भी स्पष्ट हो गया है। विवाह के समय मन्त्र पाठ करते हुए पुरोहित द्वारा निश्चय ही स्वामी का गोत्र प्रवरादि जाबाला ने सुना होगा। गर्भाधान काल में भी जो मन्त्र पाठ किये जाते हैं, उस समय भी जाबाला अपने पति के गोत्रादि की बात न सुन

पायी–इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बड़ी आश्चर्यजनक बात है। विवाह हुआ, पति का संग हुआ, पुत्र हुआ, इतना होने पर भी जाबाला अपने पति का नाम व गोत्र नहीं जान पायी–ऐसा कहकर जो लोग जाबाला को बुद्धिहीन बताना चाहते हैं उन लोगों की इस प्रकार की बातें कितनी कपटतापूर्ण हैं, इसे बुद्धिमान शास्त्रज्ञ और सामाजिक लोग विचार करें। उन लोगों ने इस प्रकार की आयुक्ति की वकालत करते हुए जाबाला को

एक अन्य प्रकार से प्रकाशित करके सरलता और सत्यवादिता के उदाहरण में कपटता और मिथ्यावादिता को घुसा दिया है। उनकी इस प्रकार की छलयुक्त चेष्टा केवल अदैव-मोहन मात्र है और कुछ नहीं। धर्म-परायण स्त्री या पुरुष सभी अपने-अपने गोत्र को जानते हैं। बालक सत्यकाम के मुख से उसकी माता के सम्बन्ध में जो सत्य और सरल वाक्य गाम्भीर्यपूर्ण संयत भाषा में प्रकाशित हुए, उन्हें किसी युक्ति द्वारा छुपाया

नहीं जा सकता। सत्यकाम ने गोपनीय सत्य को भी सरल भाव से प्रकाशित किया था इसलिए ऋषि गौतम जी ने उसकी सरलता और सत्यवादिता को स्वीकार किया तथा उसे ब्राह्मण कहकर सम्बोधित किया, जैसा कि माधवभाष्य सामसंहिता के वाक्य से जाना जाता है

"आर्जवं ब्राह्मणे साक्षात्
शूद्रोऽनार्जवलक्षणः।
गौतमस्त्विति विज्ञाय
सत्यकाममुपानयत्।।"

{भा. 6-17-23}

{तर्करत्न महाशय इस बात का उत्तर न देकर अन्य प्रसंग उल्लेख करते हुए कहने लगे }—भगवद्-भजनकारी व्यक्ति इस जन्म में चाहे जितनी भी उन्नति कर ले उसे ब्राह्मण जाति का सम्मान व आसन नहीं दिया जा सकता। मृत्यु के बाद ब्राह्मण के घर जन्म ग्रहण कर लेने पर ही उसका दुर्जातित्व दूर होगा।

महोपदेशक- जाति से ब्राह्मण

व्यक्ति कर्मफल के अधीन एक जीव होता है। उसके समान आसन पर अधिकार करके कर्ममार्ग में भ्रमण करने की नीच आशा तो भगवद् भक्त की होती ही नहीं। भगवद्-भक्त तो ब्रह्मा की पदवी, इन्द्र की पदवी यहाँ तक कि स्वर्ग और मोक्ष को भी नरक के समान दर्शन करता है। भोग तथा मोक्ष की कामना को पदाघात न कर पाने तक भक्ति का आभास भी उदित नहीं होता।

प्रमाण

"नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन
विभ्यति।
स्वर्गापवर्ग नरकेष्वपि
तुल्यार्थदर्शनः।।"

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची
हृदि वर्तते।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र
कथमभ्युदयो भवेत्।।
{भक्ति रसामृत सिन्धु पूर्व
द्वितीय लहरी, 15 श्लोक}

भगवद्- भक्त को योनियों में भ्रमण नहीं करना पड़ता और फिर भगवद्-भक्त

का पुण्यकर्म फल से बाध्य, त्रिताप से तप्त ब्राह्मण योनि में आना व उसके द्वारा अपना दुर्जातित्व ध्वंस करना—इस प्रकार की कल्पना हास्यास्पद, युक्तिरहित व अशास्त्रीय है।

भगवान् के नित्यसिद्ध भक्त हनुमान, गुहक, गरुड़, ठाकुर हरिदास, श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभु, श्रील वासुदेव दत्त ठाकुर, श्रील उद्धारण दत्त ठाकुर, श्रील झडू ठाकुर आदि निखिल

ब्रह्माकुलवन्द्य हैं। इन सभी भक्त लोगों को दुर्जातित्व दूर करने के लिए एक बार फिर कमर्फल बाध्य बद्धजीवों के उपयोगी कारागार में, लौकिक ब्राह्मण घर में जन्म लेना होगा—इस प्रकार की युक्ति तमाम शास्त्रों एवं महाजनों के प्रमाण से बाहर है तथा कर्मों के भयानक जाल में फंसे जीवों के अपराध से पैदा हुए विचारों का कोलाहल मात्र है।

तर्करत्न- तुम्हारे साथ बातचीत

करके मैं बहुत ही सन्तुष्ट हुआ हूँ। तुम विद्वान हो। मैं तुम्हारे शिष्ट व्यवहार से भी मुग्ध हुआ हूँ।

महोपदेशक - आपके साथ बातचीत करके मैं ये जान पाया हूँ कि साधारण लोग जिस प्रकार से श्रीचैतन्य चरितामृत पाठ करते हैं, आपने भी उसी प्रकार पाठ किया है। मेरा विचार है कि यदि आप किसी वास्तविक चैतन्यानुगत शुद्ध भक्त से हरिकथा श्रवण करें तो अवश्य

ही आपकी विकृत धारणा बदल जाएगी एवं आप गौड़ीय मठ को भी समझ सकोगे। साक्षात् रूप से श्रीगौड़ीय मठ की कथा न सुनने के कारण अर्थात् गौड़ीय भक्त के मुख से कथा न सुनने के कारण तथा अन्य किसी भ्रान्त व्यक्ति के पास उसकी मन:कल्पित कथा को ही "गौड़ीय मठ की कथा" समझने से आप गौड़ीय मठ को अन्य भाव से दर्शन करते हैं। आप बुजुर्ग तथा विद्वान व्यक्ति हैं। आप श्रीगौड़ीय मठ की कथा को

विशेष भाव से आलोचना करें। श्रीगौड़ीय मठ "श्रीमद्भागवत" का ही एकान्तिक प्रचारक तथा ब्रइण्य धर्म का उत्कर्ष प्रचारकारी है। श्रीगौड़ीय मठ दैववर्णाश्रम धर्म का पुनः संस्थापक है।

तर्करत्न- मैंने विशेष मनोयोग के साथ ही चैतन्य चरितामृत पढ़ा है एवं तुम्हारे विषय को सुना तथा स्वयं पाठ भी किया है।

महोपदेशक- सार्वभौम

भट्टाचार्य के समान विशेष प्रवीण एवं वेदान्तिक पण्डित दुनियावी विचार से श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को पहले सिर्फ महाभागवत "परम भक्त" समझते थे परन्तु बाद में श्रीचैतन्य देव के अनुगतभक्त गोपीनाथ और स्वयं श्रीचैतन्य देव की कृपा से उन्हें साक्षात् भगवान् जान पाये।

अधिक क्या कहें, सार्वभौम तो पहले श्रीचैतन्य देव को एक मात्र साधक जीव

समझते थे। इसलिए तो वे उन्हें वेदान्त श्रवण कराकर उनके {श्रीचैतन्य महाप्रभु के} संन्यास धर्म की रक्षा कराने के पक्षपाती एवं शुभाकांक्षी हुए थे किन्तु श्रीचैतन्य देव के भक्तों की कृपा से जान पाये कि श्रीचैतन्य देव साधारण संन्यासी ही नहीं, अपितु स्वयं परतत्त्व हैं।

तर्करत्न- तुम्हारे पाण्डित्य और सरलता से तुम्हारे प्रति स्नेह होता है। किन्तु मैं समझता हूँ कि ब्राह्मण की सन्तान होते हुए भी

तुमने जो कार्य किया उससे तुम भ्रान्त हो गये हो।

महोपदेशक- भ्रान्त कौन है, इस विषय में दोनों को एक-दूसरे के प्रति सन्देह हो सकता है, परन्तु सत्य एक है तथा भ्रम, प्रमाद, करणापाटव एवं विप्रलिप्सादि दोषों से युक्त मानव असत्य को ही सत्य समझता है।

मैं धृष्टता करके कह रहा हूँ कि यदि कुल गौरव से देखा जाये तो मैं राढ़ीय श्रेणी के

शौक़ ब्राह्मणों में से एक हूँ और भट्ट पल्ली वंश के गौरव की अपेक्षा हमारे वंश का गौरव किसी अंश में भी कम नहीं है, परन्तु गौड़ीय मठाश्रित शुद्धभक्तों के सेवकों के सेवकों के चरणों का एक रेणु भी यदि अपने मस्तक का भूषण कर सकूँ तो मैं उस अपार्थिव गौरव से गौरवान्वित हो सकता हूँ, जिसके साथ पार्थिव कुलीनता के गौरव की तुलना हो ही नहीं सकती।

अच्छा, मैं आपसे एक

बात पूछता हूँ। हम लोगों की शौक्र धारा ब्रह्मा के समय से आज तक लगातार अमिश्रित भाव से व अपतित संस्कारों के रूप में आ रही है क्या इसका कोई ठोस प्रमाण है? यदि कोई ये बात पूछ ले तो निष्कपटता से इसका उत्तर दिया जा सकता है?

तर्करत्न- तुम्हारा गोत्र और प्रवरादि तो अटूट हैं; ये ही यथेष्ट प्रमाण हैं।

महोपदेशक- जिनकी अपनी

संतान नहीं है और उन्होंने दूसरों के और से उत्पन्न पुत्र को गोद ले लिया एवं उसका गोत्रादि भी बदल दिया, तब उस गोद लिये पुत्र का गोत्र एक ही रहने पर भी उसकी शौक्र धारा कहाँ अटूट रही? इसलिए गोत्र के द्वारा ब्राह्मणता अटूट रह गयी-ये कैसे प्रमाणित किया जाएगा? विशेषतः श्रीमहाभारत ग्रन्थ में धर्मराज युधिष्ठर नहुष को कहते हैं- "सभी वर्गों के पुरुष सभी वर्गों की स्त्रियों से संतान उत्पत्ति करने में समर्थ हैं अतः

मानवों के सभी वर्गों में संकरता होने के कारण किसी भी व्यक्ति की जाति निरूपण करना बहुत मुश्किल हो गया है।

"जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।
संकरात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः।।
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ. मैथुनमथो जन्म मरणन्च समं नृणाम् ।।"
{महा. व. प. 180/31-32"

एक दिन सत्यप्रिय वैदिक ऋषि लोगों ने भी इसीलिये कहा–

न चैतद्विद्मो ब्राह्मणाः स्मो वयमब्राह्मणा वेति"

{महा.व.प. 180/32 श्लोक की नीलकण्ठ-टीका-धृत-श्रुति}

तर्करत्न- अति प्राचीन काल में यदि इस प्रकार की कोई घटना घटी भी हो तो हम उसे नहीं जान पा रहे हैं। इसलिए उसमें ब्राह्मणता की कोई हानि नहीं हो सकती। हमारे सामने तो इस

प्रकार की कोई घटना नहीं घटी।

महोपदेशक- दस वर्ष पहले या अभी हमारी आँखों के सामने इस प्रकार का कार्य नहीं हुआ या भविष्य में नहीं होगा इसका क्या ताम्रशासन {ताम्रलिपि} है?

तर्करत्न- असदाचारी, गायत्री-संध्या-वन्दनादि से रहित ब्राह्मणों की मैं प्रशंसा नहीं करता हूँ परन्तु आजकल भी सदाचारी साग्निक ब्राह्मण हैं।

महोपदेशक- ब्रह्मा जी से

प्रज्वलित अग्निधारा के संरक्षणकारी साग्निक ब्राह्मण बंग-देश में या भारतवर्ष में कौन-2 हैं ? आप कृपा करके क्या मुझे बता सकते हैं ?

तर्करत्न- ये ठीक है कि बंगला देश में आजकल इस प्रकार के साग्निक ब्राह्मण नहीं हैं। हाँ, काशी में कुछ दिन पहले एक साग्रिक ब्राह्मण थे, अब वे परलोक सिधार गये हैं।

महोपदेशक- इस प्रकार दो-एक ब्राह्मणों को ब्राह्मण

कहने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, तब भी वे अप्राकृत वैष्णव के बराबर नहीं हैं, क्योंकि वैष्णव केवल कर्ममार्गीय विचारों में अधिष्ठित नहीं हैं। वे लोग तो अप्राकृत-विष्णु भक्ति में ही प्रतिष्ठित होते हैं। पाप से पुण्य, असत्कर्म से सत्कर्म श्रेष्ठ है परन्तु भगवद् भक्ति या वैष्णवता पाप और पुण्य तथा सत् एवं असत् कर्मों से अतीत अप्राकृत आत्मवृति है।

तर्करत्न- काशी में मैंने सुना था

कि आप देवी-देवताओं को नहीं मानते हो तथा कोई भी गौड़ीय मठवासी विश्वनाथ दर्शन के लिए नहीं जाता है।

महोपदेशक- श्रीगौड़ीय मठ वाले ही देवी-देवताओं का यथार्थ सम्मान करते हैं। जो लोग देवी-देवताओं को अपने किसी स्वार्थ अथवा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की कामना को पूरा कराने में सहायक अर्थात् देवीदेवताओं को अपना सेवक बना लेना चाहते हैं—गौड़ीय मठ

उनके कार्यों में बाधा देता है। श्रीगौड़ीय मठ ने मुझे शिक्षा दी है कि देवी-देवताओं से अपने लौकिक अपस्वार्थों की पूर्ति कराने की सेवा मत करवाना। उन्हें अपना सेवक, अपने बगीचे का माली या अपनी प्रजा मत बनाना। उनके पास से अपस्वार्थों का अर्थात् दुनियाँ की नाशवान् वस्तुओं का दोहन करने मत जाना। कहने का मतलब कि उनसे दुनियावी वस्तुएँ मत माँगना, उनसे बनियागीरी मत करना। उनसे अपनी आत्मवृति

के विकास के लिए प्रार्थना करना, क्योंकि आत्मवृति के विकास से ही अधोक्षज {इन्द्रिय ज्ञान से परे} भगवान् प्रसन्न होते हैं।

मैं तो कई वर्षों से गौड़ीय मठ के साधुओं के साथ रह रहा हूँ एवं उन्हीं के अनुसरण में मैंने भारत के अनेकों तीर्थ स्थान भ्रमण किये हैं। उनके साथ रहते हुए ही मैंने अनेकों पण्डितों, ब्राह्मणों तथा पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित विद्वानों तथा

जन-साधारण से बातचीत की है। सभी से बातचीत करके मैंने ये देखा है कि जो अपने आपको "हिन्दुधर्मावलम्बी" कहते हैं तथा मुँह से वेद को भी मानते हैं, उनमें से अधिकतर अपने आराध्यदेव के सम्बन्ध में अनभिज्ञ हैं। उनमें से कोई तो धर्म के लिए सूर्य की उपासना, कोई धन के लिए गणेश जी की उपासना, तो काई अपने काम {Lust } की पूर्ति के लिए शक्ति की उपासना तथा कोई मोक्ष की प्राप्ति के लिए रुद्र की

उपासना करते हैं और कोई -2 तो विष्णु को इन देवताओं के बराबर अथवा इन्हीं में एक–पंचम देवता मानकर उनकी अनित्य या तात्कालिक मूर्ति की कल्पना करते हैं। सभी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के भिखारी बन कर आत्मेन्द्रिय तर्पण के लिए व्यस्त हैं। अधोक्षज परमतत्व के इन्द्रियतर्पण की बात किसी के मुँह से नहीं निकलती। अधोक्षज वस्तु की अप्राकृत इन्द्रियाँ हैं। उन्हीं इन्द्रियों के द्वारा वे

अप्राकृत विलास करते हैं। उनका वह विलास नित्य है । उस विलास के ईंधन के रूप में प्रकाशित होना ही प्रत्येक जीव का आत्मधर्म है—चैतन्य वाणी को छोड़ कर यह बातें कहीं सुनी ही नहीं जातीं। भगवान विष्णु, भोगी लोगों के कामद देवता नहीं हैं । वे स्वयं कामदेव हैं। उन कामदेव के काम में नित्य सेवादार रूप से रहना ही प्रत्येक स्वरूपोप्लब्ध जीव का नित्य व सनातन धर्म है।

हम में से अनेकों ने श्रीविश्वनाथ

जी के दर्शन किये हैं। मैंने मथुरा में भूतेश्वर के दर्शन किए हैं। भुवनेश्वर में भुवनेश्वर शिव के भी दर्शन किये हैं। तुम्हें किसने कहा कि हम विश्वनाथ के दर्शन नहीं करते ? हाँ, हमारे आचार्यदेव जी की शिक्षा है कि विश्वनाथ के दर्शन करते हुए कहीं विश्व दर्शन में ही व्यस्त मत हो जाना; भूत व भुवन को देख कर, भूतेश्वर अथवा भुवनेश्वर का दर्शन हो गया, इस प्रकार मत समझना।

तर्करत्न- तुम विश्वनाथ का

किस भाव से दर्शन करते हो ?

महोपदेशक- हम लोग उन्हें श्रीमद्भागवत के कथनानुसार "वैष्णवानां यथा शम्भु" -अर्थात् वैष्णवों में शिवजी महाराज परम वैष्णव हैं- विचार से दर्शन करते हैं तथा गोपेश्वर महादेव जी को गुरुवर्ग के आनुगत्य में "वृन्दावनावनिपते" यह श्लोक पाठ करते हुए प्रणाम करते हैं ।

विश्वनाथ जी अपनी तमोमयी रुद्रमूर्ति संवरण करके

कृष्ण-प्रियतम्, नित्य जगद्गुरु मूर्ति प्रकाशित करें—ये ही हम उनके पास प्रार्थना करते हैं तथा हम उसी नित्यमूर्ति की पूजा करते हैं।

तर्करत्न- क्या तुमने शास्त्रीय वर्णाश्रम धर्म स्वीकार किया है?

महोपदेशक- वर्तमान समय में श्रीगौड़ीय मठ ही शास्त्रीय दैववर्णाश्रम धर्म का प्रचार कर रहा है। श्रीचैतन्य देव का धर्म श्रीमद्भागवत के साथ घनिष्ठ

भाव से संश्लिष्ट है; जैसा कि श्रीमद्भागवत में देखा है–

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यन्जकम् ।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ।।"

{भा. 7/11/35}

मनुष्यों के वर्ण के प्रकाशक जो दो लक्षण कहे गये हैं, वही-वही लक्षण यदि जन्मगत वर्ण के अतिरिक्त किसी और में देखने को मिलें, तो उन लक्षणों द्वारा ही वर्ण

निर्देश करना होगा {अर्थात यदि निम्न वर्ण में उत्पन्न मनुष्य में उच्च वर्ण के लक्षण तथा उच्च वर्ण में उत्पन्न मनुष्य में निम्न वर्ण के लक्षण देखे जाएँ तो उसका वर्ण निर्धारण देखे गए लक्षणों के अनुसार ही होगा, अर्थात् यदि वैश्य कुल में उत्पन्न किसी मनुष्य में ब्राह्मण के लक्षण देखे जाएँ, तो उसे ब्राह्मण ही मानना होगा} क्योंकि केवल जाति से ही वर्ण निर्दिष्ट नहीं होता। श्रीचैतन्य देव जी ने जिनको जगद्गुरु और जिनके

सिद्धान्त को सही बताया; वही ब्राह्मण कुल शिरोमणि जगद्गुरु श्री श्रीधर स्वामीपाद उक्त श्लोक की टीका लिखते हुए कहते हैं-

"शमादिभिरेव ब्राह्मणादिव्यवहारो मुख्यः, न तु जातिमात्रत् । यद् यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्येत, तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षण-निमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिशेत्; न तु जातिनिमित्तेनेत्यर्थः।"

{भा. 7/11/35 भावार्थ दीपिका}

शमदमादि गुणों को देखकर ब्राह्मणादि वर्ण का निर्णय करना ही प्रधान व्यवहार है। साधारणतः जाति द्वारा ही ब्राह्मणत्व निरुपित होता है, केवल ये ही नियम नहीं है। इसका प्रतिपादन करने के लिए ही "यस्य लक्षणं . . . . . ।" श्लोक {भाद्र 7-11-35} की अवतारणा कर रहे हैं। यदि ब्राह्मणोचित संस्कारों से रहित अशौक (जिसका जन्म ब्राह्मण कुल में न हुआ हो) या संस्कारहीन ब्राह्मण अर्थात्

जिसकी संज्ञा ब्राह्मण नही है व्यक्ति में शम-दमादि गुण देखें जाएँ तो उसको शौक जाति के निमित्त बाध्य न कर, उसके लक्षणों द्वारा ही उसके वर्ण का निरूपण करना होगा। श्रीमद्भागवत ने जन्मगत वर्ण को "च्युतगोत्रीय" एवं वैष्णवों को "अच्युतगोत्रीय" बताया है; (भा. 4/11/22) कारण, वैष्णवता का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। जन्म का चक्कर तो च्युति व स्खलन से उदित होता है। जन्मगत

सर्वोत्कृष्ट वर्ण का कोई व्यक्ति, वर्तमान जन्म के कमर्फल के अनुसार अगले जन्म में किसी नीच योनि (पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि की योनि) में भी जा सकता है । इस जन्म में भी नाना प्रकार से उस का पतन हो सकता है । परन्तु वैष्णवता अच्युत व नित्य होती है। वह आत्मचेतन की वृत्ति है। उसमें जड़ वस्तुओं का कोई स्पर्श नहीं है। ये प्रत्यक्ष सत्य है कि जो उत्पन्न होता है, वह ही नश्वर और परिणामशील होता है। उसमें

ही नाना प्रकार की हेयता व अनुपादेयता है–

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं
जन्म मृतस्य च–'
{गीता2 / 27 }

श्रीमद्भागवत में भी कर्मों के इस चक्कर की निन्दा की गयी है।

"कर्मणां
परिणामित्वादाविरिन्चयादमंगलम्।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि
दृष्टवत्।।
{भा.11-19-18 }

पण्डित व्यक्ति ब्रइलोक तक जितने भी अकृष्ट पुण्य हैं, उन सबको भी कर्म से उत्पन्न जानकर अमंगलस्वरूप व क्षणस्थायी समझकर विचार करें। {श्रीमद्भागवत 5-4-12, 9-17-3 तथा 9-20-1 श्लोक}। और भी बहुत से प्रमाण आलोचना करने से देखा जाता है कि भागवत में जन्मगत वर्ण विधान की अपेक्षा वृतगत {स्वभावगत} वर्ण-विधान की ही अधिक प्रधानता प्रतिष्ठित हुई है । क्षत्रिय ऋषभ देव की

क्षत्रिय देवदत्ता पत्नी से सौ संतानों की उत्पत्ति हुई जिनमें से भरत भारतवर्ष के तथा उनके छोटे नौ भाई नौ वर्षों {देशों} के राजा हुए। कवि, हवि आदि नौ पुत्र महाभागवत वैष्णव हुए तथा नवयोगेन्द्र नाम से विख्यात हुए। पुरु वंश में भी अनेकों ब्रइर्षियों ने जन्म ग्रहण किया। चन्द्रवंशीय आयुराज के पुत्र क्षत्रवृद्ध थे जबकि इसी वंश में शौनक जी ब्राह्मणता लाभ करके मुनि हुए। इस प्रकार सैकड़ों प्रमाण श्रीमद्भागवत में देखे जाते हैं।

श्रीमद्भागवत की आलोचना करने से जाना जाता है कि सत्ययुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इस प्रकार का वर्ण-विभाग नहीं था; त्रेतायुग के आरम्भ होते ही गुण-कर्म के विभाग द्वारा चार वर्ण प्रकाशित हुए। गुण-कर्म—ये बात ही वर्ण निर्णय की मूल बात है। इसे छोड़ देने से वर्ण शब्द की कोई मर्यादा ही नहीं रह जाती। गुणों के द्वारा ही व्यक्ति इस लोक में व परलोक में पहचाने जाते हैं तथा पूजे जाते हैं।

प्रमाण

"आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस
इति स्मृतः।
कृत कृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्
कृतयुगं विदुः।।
त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे
हृदयात् त्रयी।
विद्या प्रादुर्भूत् तस्या अहमासं
त्रिवृन्मथः।।
विप्र-क्षत्रिय-विट्शूद्रा मुखबाहु
रूपादजाः।
वैराजात् पुरुषाज्जाता य
आत्माचार-लक्षणाः।।"

{भा. 11-17-10, 12, 13}

तर्करत्न- तुम एक ब्राह्मण संतान हो इसलिए मैं तुम्हें स्नेह करता हूँ।

महोपदेशक- हाँ, शास्त्र में केवल जाति को ही तो ब्राह्मण नहीं कहा गया गया है; वहाँ तो मुख्यतः वृत्ति अर्थात् गुणों के अनुसार ब्राह्मणत्व का निरूपण किया गया है। आपने तो आचार्य शंकर द्वारा ब्रजसूचिकोपनिषद के भाष्य को पढ़ा ही होगा; वहाँ पर श्रुति में क्या कहा गया है–

"तर्हि जातिब्रह्मण इति चेत्तन्न।

तत्र जात्यन्तरजन्तषु अनेकजातिसम्भवा महर्षयो वहवः सन्ति । ऋष्यश्रृगों मृग्यः कौशिकः कुशात्, जाम्बुको जम्बुकात्, वाल्मीको वल्मीकात्,

व्यासः कैवर्त्तकन्याया, शशपृष्ठात् गौतमः, वशिष्ठः उर्वश्याम्, अगस्त्यः कलसे जात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो वहवः सन्ति । तस्मान्न जातिब्राह्मणः।"

{तात्पर्य - तब क्या जाति ही

ब्राह्मण है ? ऐसा नहीं । अन्य जातियों के प्राणियों में भी जात्योद्भूत महर्षि लोग उत्पन्न हुए हैं। हिरणी से श्रृंग ऋषि, कुश से कौशिक, जम्बूक से जाम्बूक ऋषि, वल्मीक से वाल्मीकि, कैवर्त की कन्या से व्यास, शशपृष्ठ से गौतम, स्वर्ग की वैश्या उर्वशी से वशिष्ठ एवं कलश से अगस्त्य जी उत्पन्न हुए थे ऐसा सुना जाता है। इसके इलावा भी भिन्न-2 जातियों से अनेकों ऋषि उत्पन्न हुए हैं—इनसे पता लगता है कि

जाति ब्राह्मण नहीं होती । }

श्रीमन् मध्वसम्प्रदाय के प्रसिद्ध वेदान्ताचार्य श्री जयतीर्थ जी ने अपनी श्रुतप्रकाशिका टीका में 'वृश्चिकताण्डुलीयक' न्याय की अवतारणा की है–

"ब्राह्मणादेव ब्राह्मण इति नियमस्य क्वचिदन्यथात्वोपपत्तेवृश्चिक-ताण्डुलीयकादिवदिति ।"

अर्थात् नर वृश्चिक {चावल का कीड़ा} के औरस से

व मादा वृश्चिक के गर्भ से वृश्चिक उत्पन्न होता है परन्तु कभी-2 देखा जाता है कि चावल से भी वृश्चिक जाति के कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं । वशिष्ठ, अगस्त्य, ऋष्यश्रृंग तथा व्यासदेव आदि ऋषि लोग पूर्वोक्त साधारण वीर्य से उत्पन्न ब्राह्मण नहीं है। अतएव जन्म एवं वृत्त {अर्थात् वृत्ति या गुणानुसार} दोनों के संयोग से ही वर्ण निरूपण किया जाना- ये ही शास्त्र विधि है। श्रीमद्भागवत के 'यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं'

श्लोक में भी यही कहा गया है।

परमाराध्य श्रील गुरुदेव में विषयवस्तु को अतिशीघ्र ग्रहण करने एवं साथ-साथ उसका सदुत्तर देने की अलौकिक शक्ति कई स्थानों पर देखी गयी। वे आधुनिक युग के तार्किक मनुष्य को अति आधुनिक युक्ति और उदाहरण के साथ समझाने की असाधारण क्षमता रखते थे। इसलिए जो भी उनके पास आते, वे ही उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाते

थे। श्रील गुरुदेव जी हरिकथामृत वितरण के समय किस प्रकार के मार्मिक उदाहरण दिया करते थे, उनके आश्रित लोग तो जानते ही हैं । जो लोग उन के समीप नहीं आ पाये, उनके लिए एक घटना {विश्वविख्यात वैज्ञानिक डा० सी. वी. रमन जी से श्रील गुरु महाराज जी की वैज्ञानिक युक्तिपूर्ण तथा भक्ति में उत्साहवर्धक प्रश्नोत्तरी} उल्लेखित की जा रही है जो कि हरिकथा प्रसंग में श्रील गुरु महाराज जी के श्रीमुख से ही

हमने सुनी है।

श्रीलगुरुदेव